बारहवीं गाथा उसकी टीका समयसार,

पहले तो - ऐसा कहा कि सोने का अंतिमभाग सोलहवान होता है, उसमें अनेक

वर्ण नहीं, एक ही वर्ण सोने का है। इसीप्रकार जिसने आत्मा का आश्रय लेकर और पूर्ण सोलहवान सोना समान, एकरूप स्वर्णसमान, एकरूप दशा जिसे प्रगटी है, ऐसे केवलज्ञानी को शुद्धनय जाना हुआ प्रयोजनवान है। ***शुद्धनय वहाँ है नहीं। पूर्ण हो गया, परंतु एक अपेक्षा से - ऐसा कहा कल कि शुद्धनय की पूर्णता केवलज्ञान में होती है।*** आस्रव अधिकार में... किस अपेक्षा ? कि जो आत्मा परमब्रह्म आनंद पूर्ण आत्मस्वरूप, यही वस्तु स्वयं शुद्धनय है परंतु इसका आश्रय लेकर, जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की दशा हुई, उसे भी शुद्धनय और जिसका आश्रय लेकर परिपूर्ण दशा प्रगट हुई उसे भी शुद्धनय कहा जाता है। पूर्ण हो गया - ऐसा कहने में आता। समझ में आया ?

आया न यहाँ, यह प्रतिवर्णिका का अर्थ यह हुआ। स्वर्ण का एकरूप सोलहवान, इसीप्रकार आत्मा का एकरूप, केवलज्ञान पर्याय पूर्ण इसप्रकार, एकरूप यहाँ... यहाँ द्रव्य का आश्रय तो है ही, ध्रुव ऊपर दृष्टि तो है, परंतु पर्याय में सोने के स्वर्ण के रंग की तरह पूर्णदशा, जिसे प्रगट हुई है, उसे शुद्धनय जाना हुआ अर्थात अब तो उसे बस जानना अकेला रहा बस ! यह विरोध करते हैं न इसमें से शुद्धनय जाना हुआ उन्हें शुद्धनय केवली को कहाँ है ? - ऐसा कहते हैं। यह केवली को हैं - ऐसा कहते हैं यहाँ।

क्या कहा देखो न, सब से ऊपर की एक (पंक्ति) स्वर्ण के वर्ण समान होने से, शुद्धनय जाना हुआ प्रयोजनवान है। ***सर्वज्ञ परमेश्वर जैसे सभी जानते हैं इसीप्रकार नय को जानते हैं, बस इतना यहाँ... अब वहाँ नय नहीं। आहाहा ! परंतु यह शुद्धनय का पूर्णरूप पर्याय में जो आता था वह आ गया, इसलिये यह शुद्धनय को जानता है - ऐसा कहा जाता है।*** - ऐसा यह मार्ग है।

और जिसे यह उत्कृष्ट स्वर्ग समान स्वभाव का अनुभव नहीं, उसे स्वर्ण का जैसे तेरहवान चौदहवान पन्द्रहवान होता है; इसप्रकार जिसे मध्यम (भाव का) अनुभव होता है, पूर्ण नहीं, उसे बीच की दशा में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, स्व के आश्रय से हुआ है, परंतु पूर्ण नहीं इसलिये वहाँ राग का भाग भी वर्तता है। तब इस शुद्धता को पर्याय का अंश, और अशुद्धता का अंश अनेक हो गये। जो केवलज्ञान में पूर्णएकरूप था- ऐसा एकरूप यहाँ नहीं साधकदशा में। - ऐसा मार्ग (है)। धीरज से समझे तो समझ में आये - ऐसा है, कोई ऐसी कठिन भाषा नहीं। भगवान पूर्ण स्वरूप शुद्धचैतन्य, इसका आश्रय लेकर जिसकी दशा पूर्ण हो गई, केवलज्ञानी को-परमात्मा को, उन्हें अब कोई आश्रय लेना शेष रहा नहीं। इसलिये शुद्धनय पूर्ण हुआ और शुद्धनय को जानते है - ऐसा कहा जाता है। आहाहा !

(श्रोता :- ***शुद्धनय प्रत्यक्ष हुआ कि परोक्ष ?) शुद्धनय प्रत्यक्ष परोक्ष - ऐसा नहीं। शुद्धनय है तो प्रत्यक्ष ही है, परंतु श्रुत (ज्ञान) की अपेक्षा परोक्ष है। जैसे केवलज्ञान आत्मा के असंख्य प्रदेश प्रत्यक्ष देखता- ऐसा (श्रुतज्ञान) नहीं देखता अतः इसे परोक्ष कहा।*** सूक्ष्मबात है भाई ! तत्त्व की बात बहुत सूक्ष्म, अभी तो प्रचलन कम हो गया अतः लोगों को समझना कठिन लगे, परंतु है तो सत्य सरल।

स्वरूप पूर्णानंद का नाथ प्रभु ! - ऐसा जिसने ध्येय बनाया, कल दोपहर को आया था न, जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला... - ऐसा त्रिकाल उसे वर्तमान पर्याय जिसकी है उसका लक्ष्य करने पर उसका ध्रुव ऊपर लक्ष्य जाता है। यहाँ यह कहते हैं कि प्रथम तो ध्रुव ऊपर दृष्टि जाती है तब उसे सम्यग्दर्शन होता है। सम्यक् अर्थात सत्यदर्शन, सत्य अर्थात जैसा पूर्ण सत्य स्वरूप है, पूर्ण जैसा सत्यस्वरूप है - ऐसा ही ज्ञान और श्रद्धान हो, उसे सम्यक् सत्य दर्शन हुआ - ऐसा कहने में आता (है)।

अब, जिसे पूर्णदशा हुई नहीं, उसे व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है - ऐसा जो यहाँ कहना है। अर्थात क्या ? कि दृष्टि तो मध्यम जीववालों की भी (है) दृष्टि तो एक (ध्रुव) ऊपर ही है (समझ में आया ?) परंतु दशा में शुद्धता की पूर्णता का अभाव है, इसलिये वह मध्यमदशा में वर्तते हैं। जघन्यदशा तो होती नहीं। कारण कि यह तो प्रथम सम्यग्दर्शन होते ही, प्रथम समय जघन्य होती है फिर तो बीत गया है बहुत सा समय... आहाहा ! धैर्यवान का कार्य है बापू ! यह कहीं शीघ्रता में आम पके - ऐसा नहीं, कहावत कहते हैं न ! उतावल करने से आम पके ? गुठली बोई और तुरंत आम लग जाय ? `आम' शांति धीरज रखना चाहिए।

यह सत्य को समझने के लिए बहुत धैर्यता चाहिए। आहाहा !

जिसने पूर्णदशा प्राप्त की है उसे शुद्धनय जाना हुआ प्रयोजनवान है, इसमें विवाद करते हैं कि इन्हें शुद्धनय कहाँ रहा अब ? परंतु यहाँ किस अपेक्षा से कहा है ?

शुद्धनय की पर्याय जो आश्रय करना है जिस चीज का इसे तो शुद्धनय कहते त्रिकाली को भी, उसकी पर्याय जो निर्मल है उसे भी शुद्धनय कहते हैं। ऐसी निर्मलदशा जिसे पूर्ण हो गई, उसे पर्याय में शुद्धनय पूर्ण हो गया - ऐसा। आहाहा ! अब - ऐसा कहाँ, धंधे के कारण सूझे (नहीं) इसमें। आहाहा ! पूरे दिन पाप का धंधा। इसमें सत्य सुनने को मिले नहीं अरे ! इसे कब समय मिले ? समय मिले तब फिर विरोध करें।

`कि यह शुद्धनय जाना हुआ प्रयोजनवान कहा, केवलीको नहीं क्योंकि, यह शुद्धनय तो सातवें, आठवें, नोंवे श्रेणीवालों को शुद्धनय है, परंतु वहाँ तो पूर्ण हो गया' -

ऐसा कहते हैं। परंतु - ऐसा नहीं। शुद्धनय की पूर्णता मध्यमदशावालों को है नहीं, चौदहवीं गाथा में कहा है न, अनुभव कहो कि शुद्धनय कहो कि आत्मा कहो, बापू? किस अपेक्षा से भाई ! आहाहा !

जहाँ त्रिकाली भगवान पूर्णानंद स्वरूप अतीन्द्रिय अमृत के सागर से भरा हुआ भगवान है। आहाहा ! इसे जिसने ध्येय बनाया और ध्यान में उसे विषय बनाया, आहाहा ! उसे सम्यग्दर्शन ज्ञान हुआ, उसका विशेष आश्रय हो तो चारित्र भी हुआ, परंतु पूर्ण आश्रय नहीं, इसलिये इसे मध्यम दशा वर्तती है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की मध्यम दशा वर्तती (है), पूर्ण जो हो तब तो उसे शुद्धनय का पूर्णस्वरूप पर्याय का फल आ गया। द्रव्य का तो आश्रय शुद्धनय है ही। परंतु पर्याय को भी शुद्धनय कहा है। तब इस शुद्धनय का पूर्ण स्वरूप तो प्रगट हो गया भगवान को, अर्थात इसे कहीं अब... व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है यह बात इसे रहती नहीं। परंतु यह बात किसे रहती है ? जिसने इस आत्मा का आश्रय लिया सम्यग्दर्शन हुआ, सम्यग्ज्ञान हुआ, शांति भी थोड़ी प्रगटी, पूर्णशांति नहीं, इसलिये पर्याय में शांति की पर्याय का भी भेद और अशांति अर्थात राग का भी भेद, ऐसे अनेक भावों को बतानेवाली... (व्यवहारनय) है ?

ऐसे अशुद्धद्रव्य को कहनेवाले होने से, कहने का अर्थ जाननेवाला होने से जिसको भिन्न-भिन्न एक-एक भावस्वरूप शुद्धनय का अंश वह पर्याय निर्मल शुद्ध का अंश और अशुद्ध (का अंश), यह भिन्न-भिन्न भाव है। यहाँ अनेकभाव है, जैसा केवली को एकरूप है - ऐसा यहाँ नहीं। शुद्ध का भी अंश है और अशुद्धका भी अंश है। ऐसे भिन्न-भिन्न एक-एकभाव स्वरूप अनेकभाव दिखाये हैं। - ऐसा व्यवहारनय, उसमें (सोने में) विचित्र वर्णमाला, पहले प्रतिवर्णिका था, स्वर्ण का एकरूप इस प्रकार सर्वज्ञ के ज्ञान की पूर्णदशा का एकरूप, आनंद की पूर्णदशा का एकरूप, (जैसे) सोने का एकरूप इसीप्रकार उसकी पर्याय का एकरूप। हसमुखभाई ! - ऐसा है।

अरे ! - ऐसा अवसर मिला मनुष्यपना, इसमें करनेका तो यह है। शेष यह नहीं किया तो फिर हो गया बाद में निःसार... यह चौराशी लाख (योनी) के अवतार। अनजान... द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावों में जाना (है) बापा ! यह तो जानता हुआ आत्मा को कहा, आहाहा ! वस्तु चैतन्य स्वरूप है और ध्रुव और पर्याय दो है, इसमें जिस पर्याय ने ध्रुव को पकड़ा... आहाहा ! अनित्यने नित्य का निर्णय किया... वहाँ सम्यग्दर्शन ज्ञान प्रगट हुआ, चारित्र की स्थिरता का एक अंश भी प्रगट हुआ। इसलिये उस दशा को मध्यम दशा कही। पूर्ण दशा नहीं, जघन्य तो उलंघ गया है, सम्यत्व होते ही। आहा ! बीच की दशा में वर्तता है उसे शुद्ध का अंश है पर्याय में और अशुद्ध

का अंश है वह भी पर्याय में, ऐसे भिन्न-भिन्न अनेक भावों को दिखाया है। आहाहा ! विकारी भाव को भी और अविकारी भाव को भी, भिन्न-भिन्न अनेक भाव है इसे जिसने दिखाया है। दिखाया है। - ऐसा व्यवहारनय विचित्र वर्णमाला समान... यहाँ विचित्र वर्णमाला समान, वहाँ (उत्कृष्ट में) एक वर्णमाला समान।

पूर्ण दशा में सोने का एकरूप सोलहवान - ऐसा जहाँ केवलज्ञान और केवलआनंद एकरूप पूर्णशुद्धता... इसे अब शुद्धनय जाना अर्थात कि इसे पूर्णदशा हो गई। आहाहाहा ! परंतु... ***बीच की मध्यमदशावालें का ध्येय तो ध्रुव ऊपर है, दृष्टि तो ध्रुव ऊपर है वह निश्चय। परंतु पर्याय में शुद्धता और अशुद्धता का अंश अभी मध्यम दशावालों को वर्तते है। यह उन्हें जानना यह व्यवहारनय को जानना प्रयोजनवान कहने में आया है।*** आहाहाहा ! समझ में आया ?

यह तो कल कहा गया था, यह तो उसका अधिक (स्पष्टीकरण है)

जाना हुआ, उस समय प्रयोजनवान है। जो शब्दार्थ में आया था कि `व्यवहारदेसिदा' इसका अर्थ किया था कि व्यवहार का उपदेश करना - ऐसा शब्द था। इसका यह अर्थ है, इसका यह अर्थ है, कि व्यवहार दिखाया अर्थात उपदेश किया। अर्थात क्या ? कि उस समय व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान (है) यह `व्यवहारदेसिदा' का अर्थ है, पहले आ गया न ! व्यवहार ? व्यवहार द्वारा उपदेश करने योग्य है यही पूरा विरोध उठता है न ? इसका अर्थ ही टीकाकार ने - ऐसा किया न इसलिए है। उपदेश करना यह बात यहाँ कहाँ है ? यहाँ तो चैतन्यस्वरूप भगवान दृष्टि में आया और निर्मलदशा प्रगट हुई, जघन्यपना पार कर गया, निर्मलदशा पूर्ण हुई नहीं, तब बीच की दशा में मध्यमदशा में, निर्मलदशा भी है थोड़ी और साथ में अशुद्धता भी है तब यह भिन्न-भिन्न अनेक भावों दिखानेवाला अर्थात जाननेवाला - ऐसा व्यवहारनय जाना हुआ प्रयोजनवान है। आहाहा ! शशिभाई ! - ऐसा है। आहाहा !

व्यापारियों को यह जैन धर्म मिला, उन्हें व्यापार से फुरसत लेना नहीं और फिर - ऐसा समझना... बापू ! यह किये बिना, छुटकारा नहीं, अन्यथा चौराशी के अवतार तो हैं ही। आहाहा ! कहाँ जन्मे, कहाँ बिछुड़े, कहाँ खेलोगे कूदोगे। यह हमारे संप्रदाय के गुरु हीराजी महाराज गुजर गये, रास्ते में गुजर गये (थे), तब हमने यह पंक्ति कही थी उस दिन हो। कहाँ जन्में ? मारवाड़ में जन्मे थे, कहाँ जन्मे कहाँ बिछड़े काठियावाड़ में बड़े हुये, साधु हुए थे एवं स्थानकवासी साधु हीराजी महाराज, कहाँ लड़ेगो लाड़, न जाने कहाँ रुह तणे जा पड़ेगा हाड़। किस क्षेत्र में शरीर पड़ेगा ? आहा ! रास्ते में यह भाई वढवान केम्प से चले और वह क्या खेराली गये आधे (रास्ते) वहाँ बीच में देह छूट गई। चलते-चलते देह छूट गई...

कहाँ मारवाड़ में जन्म, काठियावाड़ में स्थानकवासी साधु, उत्कृष्ट अच्छी तरह से ऐसे लोगों को प्रिय हुये, और मरण होने पर जगत के कोई साथ में नहीं थे। यह आगे-आगे चलते थे। अकेले स्वयं पीछे से डचूडो (हर्टअटेक) आया चलते चलते अंदर से। आहाहा ! तेहत्तर (संवत की) चैत्र वदी अष्टमी, तेहत्तर, तेहत्तर। इस प्रकार लड़खडा कर गिर पड़े बस रास्ते में देह छूट गयी वही के वही। कहाँ जन्मे, कहाँ बढ़े, कहाँ देह छूटा। आहाहा ! इसीप्रकार यह कहाँ जन्मा कहाँ बड़ा हुआ, बाहर के साधन आदि और कहाँ जाकर देह छूटेगी ? बापू ! आहाहा ! कारण कि देह कहीं इसकी चीज नहीं। यह तो भिन्न है। संयोग (वश) आयी है एवं संयोग का काल पूरा होने पर छूट जायेगी यह तो। आहाहाहा !

इसके पहले यह आत्मा भगवान पूर्णानंद का नाथ है उसका जो इसने ध्येय बनाया... आहाहा ! तब इसकी पर्याय में निर्मलता प्रगट हुई, तब निश्चय दृष्टि तो ध्रुव ऊपर है। परंतु पर्याय में शुद्धता (भी) है थोड़ी अशुद्धता भी है, इन दोनों दशाओं को एक साथ जानना, इसका नाम व्यवहार से जाना हुआ प्रयोजनवान कहलाता है आहाहा ! कुछ समझ में आया ?

व्यवहार से निश्चय होता है - यह बात यहाँ नहीं, उसीप्रकार व्यवहारनय का विषय नहीं - यह बात भी नहीं। व्यवहार का विषय है। परंतु जैसे निश्चय में ध्रुव ऊपर दृष्टि है यह तो निश्चय हुआ। अब पर्याय में अपूर्ण शुद्धता के साथ में अशुद्धता है इसे जानना, यह कौन नय कहलाये ? कि यह पर्याय है अतः इसे जानना यह व्यवहार नय कहलाये। त्रिकाल को जानना वह निश्चय कहलाया। आहाहा ! ऐसे सभी भंग, भेद और वह भी सभी के अर्थ करने में विरोध। ये यह `व्यवहार दिखाना, उपदेश करना - ऐसा कह कर चौथे, पाँचवें, छठवें (तक) व्यवहार ही होता - ऐसा बताते हैं। और शुद्धनय, पूर्ण है (वह) केवलज्ञानी को है - ऐसा नहीं, उन्हें नय ही नहीं। नय तो सातवें, आठवें, दशवें में है उन्हें शुद्धनय है ऐसा कहकर मध्यमवालों को ही वहाँ नय सिद्ध किया है। नीचेवालों को निश्चय नहीं, सबसे ऊपर पूर्णतावालों को शुद्धनय नहीं है' शुद्धनय यह बीचवालों को होता, इसमें से - ऐसा वह निकालते है। आहाहा ! - ऐसा नहीं भाई ! वस्तु की स्थिति तुम कुछ ख्याल में लो तो बैठ जाय ऐसी बात है। आहा !

कि वस्तु है यह चैतन्यघन है। अनंत... अनंत... गुणों की राशि और एक-एक गुण में अनंत... अनंत... अनंत... सामर्थ ऐसे अनंतगुणों का पूर्ण पिण्ड प्रभु ! प्रभु स्वयं है। भगवान है ! परमात्मा है ! आहाहा ! ऐसे परमात्मा की दृष्टि करना... उसकी इस दृष्टि का नाम सम्यग्दर्शन, निर्विकल्प दृष्टि प्रगट करना उसका नाम सम्यग्दर्शन

और उस सम्यग्दर्शन के समय, शुद्धता पूर्ण हुई नहीं तब अशुद्धता भी कुछ साथ में है, चाहे आगे बढ़ा हो कुछ सम्यग्दर्शन बाद चारित्र, तो भी उसे, पूर्णशुद्धता नहीं, उसे अशुद्धता साथ में है।

शुद्धता का अंश वह भी पर्याय है अतः व्यवहार का विषय है, और साथ में अशुद्धता का अंश यह भी पर्याय है अतः व्यवहारनय का विषय (है) अरे ! - ऐसा अब कहाँ। वह विचारे फिर (पक्ष में) चढ़ गये, प्रतिमा लेना और... यह व्रत लेना और कपड़े छोड़ना और नग्न हो गये।

अरे बापा ! - ऐसा भेष तो अनंतबार किया भाई ! परंतु इसमें कुछ है नहीं। आहाहा ! अरे ! जिसमें जन्म-मरण का अंत न आये, जिसमें भव का अंत न आये, यह मार्ग क्या भाई ! आहाहा ! मार्ग तो यह, आहाहा ! कल आया था न दोपहर को कि ***जाननेवाली जो पर्याय है वह वर्तमान है यह वस्तु त्रिकाली को बताती है। यह वर्तमान किसका ? कि कोई त्रिकाली है उसका। आहाहा !***

इसप्रकार वर्तमान सम्यग्दर्शन त्रिकाली को श्रद्धता है। वह इसीप्रकार वर्तमान सम्यग्ज्ञान का अंश त्रिकाली को जानता है। वह निश्चय कहलाता और जो ज्ञान का अंश वर्तमान पर्याय शुद्ध और अशुद्धतारूप भेद है, इन पर्यायों को जो जानता (है) उस नय को व्यवहार कहा जाता है। क्योंकि वर्तमान को व्यवहार कहना और त्रिकाल को जानना यह निश्चय कहलाता है। आहाहा ! समझ में आया ?

और इस व्यवहारनय अपेक्षा यह पर्याय है, कुछ शुद्ध है, पूर्ण शुद्ध हो तो निश्चय, कि शुद्धनय अब रहा नहीं और वहाँ व्यवहार तो है ही नहीं। यहाँ अपूर्णता अशुद्धता है, सम्यग्दर्शन साधकभाव प्रारंभ हो गया है, ज्ञान शांति प्रगट हुई है, परंतु पूर्ण शांति नहीं, पूर्णचारित्र नहीं इसलिये उसकी पर्याय में अशुद्धता का अंश, व्रत नियम आदि का विकल्प होता है। आहाहा ! उसे अशुद्धपर्याय को और शुद्ध पर्याय को जाने। पर्याय को जाने उसे व्यवहारनय कहते है।

क्या कहा ? (श्रोता :- पर्याय को जाने वह व्यवहारनय) पर्याय, पर्याय स्वयं व्यवहारनय का विषय है। द्रव्य स्वयं निश्चयनय का विषय है। आहाहा ! त्रिकाली भगवान यह निश्चय का विषय है, और वर्तमान उसका अंश खण्ड यह पर्याय, यह व्यवहार का विषय है। आहाहाहा ! इसलिए धर्म की शुरूआत जिसने की है अंतर आश्रय लेकर, और पूर्णता हुई नहीं, उसे अभी पर्याय में अशुद्धता और शुद्धता का अंश है, वह भिन्न-भिन्न एक-एक भावस्वरूप... देखा ? यह शुद्धता का अंश भी अलग जाति का है, परंतु एक समय का हाँ ?

एक-एक भाव और बाद में जो भाव होता उसके बाद, यहाँ तो एक-एक समय

में जानना है और जाना हुआ उस-उस समय अर्थात कि जिस समय शुद्धता का अंश है और अशुद्धता का अंश है उसे उस समय जाना हुआ प्रयोजनवान (है)। दूसरे समय कुछ शुद्धता का अंश बढ़ता है अशुद्धता घटती है उस समय वह भिन्न-भिन्न और अनेक को जानना यह प्रयोजनवान (है)। भाई ! यह भिन्न-भिन्न क्यों ? अर्थात एक समय में भिन्न-भिन्न की बात है ?

बाद के समय में भिन्न-भिन्न... प्रथम समय में भिन्न-भिन्न, तीसरे समय में भिन्न-भिन्न अर्थात ? शुद्ध का अंश है और अशुद्ध का अंश है यह भिन्न-भिन्न जाति है। समझ में आया कुछ ? आहा ! मार्ग बापा ! यह वीतराग का मार्ग बापा बहुत अलौकिक है। (श्रोता :- यह एक ही अलौकिक है) हाँ ! आहाहा ! और यह किस प्रकार कहा है देखो तो अवश्य, संत यह कैसी भाषा की सरलता से इसमें सत्य को प्रसिद्ध किया है। इस टीका का नाम आत्मख्याति है। (इसमें) आत्मा को प्रसिद्ध किया है।

अब आत्मा है यह सम्यग्दर्शन में प्रसिद्ध हुआ। सम्यग्ज्ञान में हुआ यह तो त्रिकाल। परंतु अभी वर्तमान पर्याय में पूर्णता नहीं और कुछ अशुद्धता और शुद्धता है। यह शुद्ध और अशुद्ध भिन्न-भिन्न जाति के भाव समय समय में वर्तते, उसे उस समय में उसे जानना प्रयोजनवान है। दूसरे समय जो शुद्धता का अंश बढ़ा, अशुद्धता का अंश घटा - इस भिन्न-भिन्न भाव को उस समय जाना हुआ प्रयोजनवान है, तीसरे समय भिन्न-भिन्न अर्थात शुद्ध को अंश बढ़ा अशुद्धता का अंश घटा। यह दोनों अलग-अलग जाति है। यह भिन्न-भिन्न अनेक को जानना यह व्यवहारनय कहा जाता है। आहाहाहाहा ! अलौकिक बातें है बापू यह।

वस्तु पूर्ण स्वरूप है न ? ध्रुव नित्य है न ? जिसकी दशा है वह त्रिकाली है न ? दशा है (और) उसका त्रिकाली न हो तब यह दशा किसकी ? आहाहाहा ! दशा अर्थात पर्याय, हालत। जिसकी दशा है (अर्थात) हालत उसका त्रिकाली है, उस त्रिकाली को जानना यह निश्चय है और वर्तमान पर्याय के शुद्ध और अशुद्ध अंश साथ में है, यह भिन्न-भिन्न जाति है, उसे उस उस समय उसे जानना वह व्यवहारनय प्रयोजनवान कहा जाता है। जाना हुआ प्रयोजनवान है। उपदेश करना और आदरना यह बात यहाँ नहीं। आहाहा !

- ऐसा है बापा क्या हो ? (श्रोता :- जानना है - हेय-उपादेय करना ?) जानना है फिर इसमें प्रश्न कहाँ रहा ? जानना है बस इतना। हेय का तो प्रश्न बाद में। हेय तो हेय, परंतु यहाँ तो बस है इतना जानना बस इतनी बात है। पुनश्च यह तो हेय है और यह उपादेय है यह तो अलग प्रश्न है। यह तो दो है इसे जानना

दो है उसे जानना, त्रिकाली को जानना, वह निश्चय है और वर्तमान है उसे जानना वह व्यवहार है, बस इतनी बात है। एक न्याय बदले तो पूरा बदल जाये - ऐसा है। यह तो मार्ग बापा ! त्रिलोकीनाथ सर्वज्ञ जिनेश्वरदेव का स्वरूप है - ऐसा भगवान ने कहा है। आहाहा ! जिसे सुनने बत्तीस लाख विमानों का स्वामी इन्द्र, एक-एक विमान में असंख्य देव दो-दो सागर की स्थितिवाले। आहाहाहा ! एक सागर में दस कोड़ा कोड़ी पल्य, एक पल्य के असंख्य भाग में असंख्य अरब वर्ष, ऐसे दो सागर की स्थितिवाले असंख्य देव एक विमान में, ऐसे बत्तीस लाख विमान इसमें कुछ थोड़े छोटे है, परंतु बहुधा तो असंख्य देवोंवाले हैं। उसका स्वामी इन्द्र, वह भी मति, श्रुत और अवधि तीन ज्ञानवाले... आहाहा ! वह भी एक आखरी भव देव का, मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाले, यह जब भगवान की सभा में हो, और ऐसी वाणी (निकलती) हो वह कैसी हो बापा ! आहाहाहाहा !

(श्रोता :- इसका कुछ नमूना दो।) यह नमूना ही आता है वहाँ का ही यह। आहाहाहा ! यह विदेह की वाणी है यह। आहाहा ! विदेह में गये थे न कुन्दकन्दाचार्य वहाँ से यहाँ आये और यह (शास्त्र) बनाया। फिर टीकाकार चाहे विदेह में न गए भले परंतु उनके भाव को जानते थे। कि इस गाथा का यह भाव है, स्वयं को जानते थे वह इसे जानते थे। अमृतचन्द्राचार्य ! वह तो एक हजार वर्ष पहले हुए थे कुन्दकुन्द तो दो हजार वर्ष पहले गये थे। आहाहाहा !

उस समय जाना हुआ, उस समय क्यों ? गाथा में है हो यह। देखो ! संस्कृत (टीका में) `व्यवहारनयों विचित्रवर्णमालिका स्थानीयत्वात्परिज्ञानायमानस्तदात्वे प्रयोजनवान्' - ऐसा संस्कृत पाठ है। `परिज्ञान मानत्वात्' - समस्त प्रकार से जानते परंतु, तदात्वे उस समय- ऐसा पाठ है इसमें। संस्कृत में।

यह क्या कहते है ? कि निश्चय है जो वस्तु यह तो त्रिकाल एकरूप ही जानना और पर्याय में जो शुद्धता के और अशुद्धता के भेद है, अभी साधक है, साधक है अतः बाधकपना भी साथ में है। यह साधक का अंश और बाधक का अंश, वह अनेक हुआ, भिन्न-भिन्न जाति के हुये। वह भिन्न-भिन्न जाति के हैं, उसे जानना यह प्रयोजनवान है। यह आदर करने योग्य है कि इससे निश्चय होता है, यह बात है नहीं। मोहनलालजी !

ऐसी बातें है भगवान ! क्या हो ? अरे ! प्रभु का विरह हुआ और यह पीछे रह गये। आहाहा ! और यह वाद का विषय ही नहीं। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य तो - ऐसा कहते हैं कि प्रभु तुम जो ज्ञान स्वरूप को प्राप्त हुये हो, तब स्वसमय और पर समय के साथ वाद-विवाद करना नहीं। कारण यह वस्तु कोई ऐसी है, कि वाद-विवाद से अंत आये - ऐसा नहीं। आहाहा !

(श्रोता :- यह साधक को कहीं शुद्धनय का प्रयोजन रहा नहीं ?) यह तो हो गया है। विषय है और कहा न ध्रुव तो सदा है। ध्रुव जो है वह तो सदा है दृष्टि में यह बात तो प्रथम ही कही। यह शुद्धनय का विषय जो त्रिकाल है यह तो है। ***अब पर्याय में शुद्धनय है यह भी अंश है पर्याय में जो शुद्धता का अंश है यह भी एक न्याय से शुद्धनय का ही अंश है।परंतु इसके साथ अशुद्ध जो है - वह यहाँ शुद्धनय का अंश जिसे कहना है उसे यहाँ व्यवहारनय का विषय कहा है। पर्याय है न ?***

त्रिकाली शुद्धचैतन्यप्रभु उसका अवलंबन लेकर ध्येय बनाकर जो दशा हुई उसे भी शुद्धनय का फल आया इसे शुद्धनय एक अपेक्षा से कहा जाता है। परंतु यह पर्याय है इसलिये उसे त्रिकाली विषय की दृष्टिवाले की अपेक्षा से, वर्तमान पर्याय को देखनेवाली है इसलिये शुद्धनय नहीं, यह व्यवहारनय है। आहाहाहा ! अरे ! भगवान तो महाविदेह में बिराजते है, प्रभु तो सभी बातें करते है वहाँ। आहाहा !

आहा ! - ऐसा व्यवहारनय विचित्र अर्थात उसमें `प्रतिवर्णिका' था। एकरूप स्वर्ण का एकरूप- ऐसा केवलज्ञानी का एकरूप पूर्ण शुद्धनय का पूर्ण एकरूप यह शुद्धनय पूर्ण हो गई इसप्रकार। शुद्ध का आश्रय लेना बंद हो गया। इसलिये पूर्णता हो गयी। और उस समय कहा न आस्रवअधिकार में कल बताया था कि शुद्धनय की पूर्णता केवलज्ञान में होती है। इसका अर्थ ? ***कि इसे अब आश्रय लेना रहा नहीं। इसलिये उसको पूर्णदशा प्रगट हुई उसे भी शुद्धनय कहा जाता है। है तो प्रमाण। अरे ! यह।***

इसप्रकार यहाँ त्रिकाली भगवान प्रभु का अवलम्बन लिया यह निश्चय है। यहाँ शुद्धनय प्रगटा है आंशिक, उसे भी, अनुभव को भी शुद्धनय कहा जाता है। परंतु यह किस अपेक्षा से ? शुद्धता के आश्रय से शुद्धता प्रगटी है इस अपेक्षा से। परंतु जहाँ दूसरी अपेक्षा लें कि त्रिकाल को देखनेवाला वह निश्चयनय है, और पर्याय को देखनेवाला वह व्यवहार है। इस अपेक्षा लेने पर यह शुद्धता का अंश और अशुद्धता का अंश इन दोनों को जाना हुआ व्यवहारनय प्रयोजनवान है। आहाहाहा ! - ऐसा है।

(श्रोता :- जानता है कि सहज जानने में आता ?) ***जानना होता है उस समय, बहुत लम्बी बात करने जायें तो पकड़ सकते नहीं*** अर्थात यथार्थ दृष्टि से देखें तो निश्चय का ज्ञान जब हुआ है उस समय ज्ञानकी पर्याय स्वपरप्रकाश की है वैसी ही पर्याय प्रगटती (है); यह तो बहुत बातें आ चुकीं हैं यह तो सभी एक साथ कहीं... यह वस्तुतः तो जितना राग भाव है और जितना शुद्धनय का अंश प्रगट है, उसे

पर्याय अपेक्षा जानना - ऐसा उस समय की ज्ञान की पर्याय सहज (हुई है), यह है इसलिये हुई है - ऐसा नहीं। यह स्वपर प्रकाशक की पर्याय ही उस समय इस जाति की होती है। आहाहाहा ! क्या इसका मार्ग ? क्या इसका फल ? क्या इसकी कला और क्या इसकी रीति प्रभु ! आहाहा !

यहाँ तक तो अपना आ गया था। यह तो अधिक स्पष्ट के लिये है। यह मार्ग, नाथ प्रभु ! अपूर्व है भाई, यह बाहर की प्रवृत्ति और क्रियाकाण्ड में रुक करके, इसमें धरम मानने से यह वस्तु रह गई। आहाहा ! इसे बाहर की महिमा रह गई।

जो राग आये समकिती को वह भी व्यवहार का विषय जानकर, जाना हुआ है प्रयोजनवान... अब इसने अज्ञान में राग की क्रिया को धर्म मानकर और साधन मानकर इससे शुद्धता होगी, (- ऐसा मानना) बहुत विपरीत दृष्टि है। आहाहाहा ! समझ में आया ?

बालको की समझ में आये - ऐसा है हाँ, बालको ध्यान रखना ! सूक्ष्मबात आती है इसलिये, यह तो आत्मा, आठ वर्ष में तो केवलज्ञान प्राप्त करते हैं। आहाहा !

चैतन्य के स्वभाव से भरा हुआ भगवान ऐसी केवली की पर्यायें तो जिसके ज्ञान गुण में अनंतो मौजूद है। आहाहा ! यह आठ वर्ष की उम्रवाला शरीर - शरीर की उम्र है न ? यह अंदर में केवलज्ञान को देखता है, केवल अर्थात वह पर्याय नहीं - एक आत्मज्ञान जिसमें केवलज्ञान की अनंती पर्याय मौजूद हैं। ऐसे असाधारणज्ञान को देखनेपर, आता है न भाई प्रवचनसार में। प्रवचनसार में आता है कि असाधारण ज्ञान के कारण को देखने पर इसे इसमें (पर्याय में) कार्य आता है। आहाहा ! कुन्दकुन्दाचार्य के शास्त्र ने तो गजब कर दिया है। केवली का विरह भुलाया जिसने। आहाहा !

वहाँ - ऐसा कहा है प्रवचनसार में कि असाधारण - ऐसा जो ज्ञान गुण त्रिकाली, आहाहा ! उसे कारणरूप ग्रहण करके अर्थात इसे ध्येय बनाकर। आहाहाहा जिसे निर्मल दशा प्रगट होती है। आहाहा ! मोक्षमार्ग जिससे प्रगट होता है असाधारण ज्ञानगुण है, त्रिकाली इसका आश्रय (लेकर) ध्येय बनाकर पर्याय में सम्यग्ज्ञान दशा प्रगट होती है। यह सम्यग्ज्ञान प्रगट होता है यह कार्य है। त्रिकाली ज्ञानगुण वह त्रिकाली एकरूपगुण अनंतशक्तिवाला वह कारण है और इसे ग्रहण करने पर फिर जो कार्य आया यह कार्य, पर्याय है। आहाहा ! कार्य पर्याय में होता है। कार्य ध्रुव में नहीं होता।

अरे...! अरे...! बात-बात में फर्क आता है। जहाँ दूसरी बात कहने जाते है वहाँ दूसरी तरह से इसमें आता है, ऐसी शैली ! कोई अलौकिक बातें बापा ! आहाहा ! जैन धर्म सर्वज्ञ का कहा हुआ यह दिगंबर धर्म यह कोई अलौकिक चीज है भाई !

यह कोई संप्रदाय नहीं।

वह तो - ऐसा कहते हैं जयपुर के एक थे न वह पण्डित इन्द्रजीत, इन्द्रजीत न ? हाँ, वह कहते कि दिगंबर में जन्म लिया, यह सभी सम्यग्ज्ञानी तो है ही। इन्द्रलालजी न ? (श्रोता :- हाँ, जी, इन्द्रलालजी) इन्द्रलाल, गुजर गये, वह - ऐसा कहते थे। दिगम्बर में जन्मे वह सम्यग्ज्ञानी तो है ही अब इन्हें व्रत लेना और व्रत पालना, आहा !

बापू ! क्या हो (गया) ? अरे रे...! सिर पर कोई स्वामी रहा नहीं, मालिक बिना के पशु भटकते है जहाँ तहाँ। आहाहा ! लकड़ी खायें, मार खायें - ऐसा कहना है हमें तो। स्वामी बिना के पशु... स्वामी को ख्याल रहता कि कोई मारनेवाला है तब पशुओं को वहाँ नहीं जाने दें। यह तो चलते रहते वहाँ और फिर सिर पर लगे फेर मार धड़ाधड़। आहाहा !

इसीप्रकार इससमय सर्वज्ञवीतराग परमात्मा का विरह हुआ लोगों ने अपनी कल्पना से मार्ग चलाया। मार... लगी सिरपर बापा भटकने की। आहाहा !

यहाँ तो परमात्मा ने कहा वह संत जगत को प्रसिद्ध करते हैं प्रभु तुम त्रिकाली वस्तु हो, वस्तु है उसे ध्येय बनाकर सम्यग्दर्शन होना यह एक मार्ग है। इसके अलावा कोई मार्ग है नहीं।

अब इन दोनों को जाननेवाले नय को क्या कहना ? कि त्रिकाल को जाने उसे निश्चय कहना और वर्तमान गुण प्रगटा है पर्याय एवं कुछ शेष है अशुद्धता, यह भिन्न-भिन्न जाति है, ***उसे उस उस समय उस उस अवसर के समय, उस प्रकार जाना हुआ और उस प्रकार वह पर्याय, उसे जानने की योग्यतावाली ही पर्याय वहाँ प्रगट होती है।*** परंतु उसे समझना है वह किस प्रकार समझावें ? आहाहा !

आत्मा ज्ञानस्वरूप प्रभु है त्रिकाल चैतन्य, उसका आश्रय लेकर जो ज्ञान हुआ वह ज्ञान समय-समय स्व को प्रकाशता है और जो कहीं पर्याय (में) शुद्धता आयी एवं अशुद्धता (शेष है) उसे भी प्रकाशती है। वैसा ज्ञान ही समय... समय प्रगट होता है। यह शुद्धता का अंश एवं अशुद्धता है इसलिए स्वपरप्रकाशक-ज्ञान प्रगट होता है - ऐसा भी नहीं। देवीलालजी ! - ऐसा है बापा ! आहाहा !

अरे ! प्रभु तुम कौन हो ? प्रभु बापू अरे तुम्हें प्रभुता की खबर नहीं भाई ? आहाहा ! ***और प्रभुता को जब पहचाना, यह पहचानने की जब दृष्टि प्रगटी। उसे जानना यह तो व्यवहार कहलाता है। तो भी इसे जानना वह तो उस समय... ज्ञान की पर्याय ही ऐसी प्रगटती है, स्व को जानना और जितनी अशुद्धता है इस प्रकार ही पर्याय को जानना, समय - समय स्वपरप्रकाशक पर्याय वह तो स्वतः होती है।***

बहुत अधिक अधिक विस्तार करने जायें बहु तो...। आहाहा ! आहाहा !

प्रभु का मार्ग बापा ! आहाहा ! भाग्यवान को तो सुनने मिले ऐसी बात है हाँ? शेष तो सभी संसार का ज्ञान किया और यह वकील हुये तथा डॉक्टर हुये एल. एल. बी. एवं एम. ए. की पूँछ लगायी न आहाहा ! यह सभी कुज्ञान है। आहाहा !

यह तो प्रभु जो ज्ञान की गठड़ी है। यह ज्ञान का सागर प्रभु है इसमें से जो ज्ञान ध्येय के साथ प्रगटां ! उसी ज्ञान को वर्तमान ज्ञान कहा जाता है। ***उस ज्ञान को वह ज्ञान जानता शुद्ध (एवं) अशुद्ध को जानता वह ज्ञान सहज प्रगट होता है।*** आहाहा ! अतः व्यवहार से जाना हुआ प्रयोजनवान है - ऐसा कहने में आया है। आहाहा !

आहाहा ! बारहवीं गाथा में बहुत भरा है। व्यवहारनय विचित्र वर्णमाला समान, कौन ? सोना, सोना है न यह अभी पहले ही पूर्ण (शुद्ध) हुआ नहीं, तब उसे आँच देते है अग्नि की तब विचित्र ! वर्ण पीलाश (दिखती) और इसमें अशुद्धता का भाग (है) तांवे का अंश ऐसे सभी वर्ण दिखते हैं और अनेक प्रकार भिन्न-भिन्न रंग भिन्न-भिन्न पीलापन का भाग और वह तांबा का भाग, भिन्न-भिन्न एक समय में, इसीप्रकार यहाँ शुद्धता अंश और अशुद्धता का अंश अनेक है ? विचित्र वर्णमाला समान होने से। आहाहा ! यह भिन्न-भिन्न एक-एकभावरूप अनेकभाव दिखाई देने से... आहाहाहा ! एक ही समय में भिन्न-भिन्न अनेक भावों को दिखाया होने से प्रथम समय (एक), दूसरे समय दूसरा, तीसरे समय तीसरा। आहाहा ! शशिभाई ! - ऐसा मार्ग है। आहाहा ! यह तो जिसे आत्मा का हित करना हो बापू ! आहाहा ! अरे रे ! अनंतकाल से... भटकता है, देखो न कितने ? आहाहा ! बालक जन्मे तब (कभी) वही के वही काटकर निकालना पड़ता माता के पेटमें से व्यवस्थित नहीं निकले, हाँ ? अरे रे ! होता है न ? (बनाव) बनता है न ? काटकर निकालना पड़ता (है)। आहाहा ! यह नौ माह सवा नो माह तो ओंधे सिर वहाँ, किस प्रकार श्वास लेना ? आहार किस तरह (लेना) ? उसे निकालते (समय) काटकर निकालना काटकर निकालते न तब मरकर कहीं जाये। आहाहा ! अरे प्रभु ! क्या है बापा ! ऐसे भव तुमने अनंतबार किये है भाई !

अब इसके दुःख को टालना हो तो यह उपाय है। आहाहा ! यह तीनलोक का नाथ प्रभु भगवान स्वयं, ध्रुव है उसे ध्येय बनाकर पहले सम्यग्दर्शन प्रगट करना है और फिर स्वरूप में ठहरने पर उसमें जो जाना है, उसमें ठहरना उसका नाम चारित्र है, चारित्र कहीं पंच महाव्रत कि नग्नपना यह कहीं चारित्र नहीं। आहाहा !

इसमें कहते हैं कि जानकर स्थिर हुआ, परंतु पूर्ण स्थिरता नहीं इसलिये अंदर

में अस्थिरता का अंश है - अशुद्धता का और शुद्धता का पर्याय में अंश है वह एक समय में भिन्न-भिन्न जाति का, उसे जानना और देखना, यह व्यवहार का विषय है, यह व्यवहारनय जाना हुआ, यह ज्ञान उस समय - ऐसा ही प्रगटता है। इसे जाना हुआ प्रयोजनवान कहा जाता है। आहाहाहा !

अभी तो यहाँ तक आया न उसे पुनः दुहराया। लो एक घण्टा तो होने को आया। आहा दूल्हेरामजी, राम की लगी यह तो। आहाहा ! प्रभु ! तुम कौन हो भाई ! आहाहा ! और तुम्हारी जाति की छाप पड़े पर्याय में जब, आहाहाहा ! जैसे तुम निर्मलानंद हो, ऐसी जब पर्याय में छाप पड़े, जाति की छाप पड़े, इस दृष्टि और ज्ञान को उस तरफ ले जानेपर... आहाहाहा ! यह ज्ञान की पर्याय और श्रद्धा की पर्याय एवं शांति की पर्याय भी अपूर्ण है अभी, अतः त्रिकाली नो विषय है यह तो निश्चय है तब इसे व्यवहार पर्याय है कि नहीं ? एक तो तुमने त्रिकाली द्रव्य कहा एवं उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन कहा तब अब इसे कोई पर्याय, पर्याय (अधूरी) रही है कि नहीं ? कि पूर्ण(ता) हो गई है ? पूर्ण का आश्रय लिया परंतु पर्याय में पूर्ण हो गया है ? हाँ ! आहाहाहा !

क्या बात की है ? गजब की है न ! शशिभाई ! भाई ! तुमने पूर्ण का आश्रय किया ध्रुव का... परंतु पर्याय में पूर्णता हुई है ? हुआ हो तब तो पर्याय का व्यवहार तुमको हो नहीं, और वह जानना रहे नहीं तुम्हें, और जो पूर्ण हुआ तब उसे अशुद्धता या शुद्धता है नहीं। अर्थात कि उसे जानना है ही नहीं। आहाहा ! इसलिये केवली को शुद्धनय जाना हुआ प्रयोजनवान - ऐसा कहा, अन्यथा तो वहाँ नय कहाँ है ? आहा ! यह कहा था न कल। एक सौ तेतालीस गाथा कर्त्ता कर्म (अधिकार) कि श्रुतज्ञान में व्यवहार भेदरूप निश्चय और व्यवहार, उस नय को केवली लांघ गये। क्योंकि नय है वह श्रुतज्ञान का भेद है। भगवान तो श्रुतज्ञान को पार कर गये हैं। आहाहाहा ! अर्थात उन्हें नय है नहीं। फिर भी - ऐसा कहा कि शुद्धनय पूर्ण हो गया इसका अर्थ यह कि उसका आश्रय करना बाकी रहा नहीं। पूर्णदशा प्रगट हो गई अब जानना काम रहा बस। आहाहा ! यह एक सौ तेतालीस (गाथा) में आता है कर्त्ता कर्म (अधिकार) में। लो यहाँ तक तो कल कह चुके थे। उसका यह चला इतना। कहो छोटाभाई ! दोपहर कल तो कहो अच्छा चला था, [श्रोता :- बहुत अच्छा निहाल हो जायें - ऐसा (था)।] हाँ निहाल हो जायें ऐसी बात सच्ची। आहाहा !

है उसे प्राप्त करना है न प्रभु ! न हो उसे प्राप्त करना हो तो तब नहीं हो। आहाहा ! - ऐसा आया था है न है... है... है... जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला... है न ? त्रिकाल... जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला... बस, है उसे प्रात करना

है, है इसप्रकार उसे स्वीकार करना है। आहाहा ! अतः पर्याय स्वीकार करती है, जिसकी हैं उसे। आहाहा ! समझ में आया ? बहुत सूक्ष्म बापू ! आहाहा !

बाद में कहें न सोनगढ़ इसलिए निश्चयवादी, एकांतवादी, एकांतवादी। प्रभु ! तुम्हें खबर नहीं बापू भाई ! (श्रोता :- तब तो आचार्यों को निश्चयवादी कहा) निश्चयवादी अर्थात यह तो एकांत निश्चयवादी... है - ऐसा कि व्यवहार से होता यह बात कहते ही नहीं। निमित्त से होता यह कहते ही नहीं। बात तो ऐसी ही है। व्यवहार है वह जाना हुआ प्रयोजनवान है - ऐसा कहते हैं। परंतु व्यवहार से निश्चय हो ऐसी वस्तु नहीं।

(श्रोता :- निमित्त नहीं, तब दोनों उपादान हैं) परंतु दो नय है उन दोनों का विषय विरुद्ध है अन्यथा दो नाम क्यों रखें ? दो नयो का समान विषय हो तब दो नाम क्यों रखे ? एक नय का विषय त्रिकाल है और एक नय का विषय वर्तमान पर्याय है शुद्ध, अशुद्ध आदि, आहाहाहा ! दोनों विरुद्ध का स्याद्वाद समाधान कर देता है। कि त्रिकाली अपेक्षा इसे निश्चय कहा, वर्तमान पर्याय है वह व्यवहार कहा। भेद हुआ न... चाहे शुद्धअंशरूप भेद है, वह व्यवहार है, त्रिकाली अभेद वह निश्चय है। आहाहा ! लो इतना हुआ लो वह बाद में आयेगा।

- प्रमाण वचन गुरुदेव !